समाज में नारी का दर्जा

विश्व युवक केन्द्र, नई दिल्ली में 23-24 अक्तूबर 1996 को आयोजित लिंग प्रशिक्षण कार्यशाला की रिपोर्ट पर आधरित एक लेख

पिछले दिनों विश्व युवक केन्द्र में एक कार्यशाला आयोजित की गई, जिसमें कार्यकत्ताओं द्वारा समाज के विभिन्न वर्गों से कुछ ख़ास मुद्दों पर बात की गई जैसे:-

1. समाज में मूल सत्ता (स्त्री और पुरुष में) किसके हाथ में है और कोई भी निर्णय लेने का अधिकार किसे है।
2. समाज में महिलाओं की क्या स्थिति है और उन्हें कितने अधिकार प्राप्त हैं।
3. समाज में स्त्री की क्या पहचान है। क्या उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व है?
4. समाज में महिलाओं की स्थिति और समस्याओं के लिए कौन ज़िम्मेदार है।

इस बातचीत से यह उभर कर आया कि स्त्रियों की पहचान मां, बहन, बेटी, पत्नी से ज़्यादा नहीं होती। पुरुष के नाम के बल पर उसका स्थान निर्धारित होता है या फिर समाज और परिवार में दी गई भूमिकाओं के आधार पर। एक पत्नी की पहचान उसके पति के बराबर नहीं होती है। वास्तव में सामाजिक दृष्टिकोण यह है कि स्त्री, पुरुष की निजी सम्पत्ति है और उसका समाज में दूसरा दर्जा है।

आर्थिक दृष्टि से भी महिलाएं स्वतन्त्र नहीं है। पैसे के लिए वह पुरुष पर निर्भर हैं। समाज में अर्थ संबंधी सभी निर्णय पुरुषों द्वारा ही लिए जाते हैं। और जहां पुरुष न हो तो निर्णय बुजुर्ग औरतों के हाथ में होता है। अतः औरत का आर्थिक सहयोग में हाथ होते हुए भी उसकी पहचान हमेशा पुरुषों से कम आंकी जाती है। यह अन्तर समाज में व्याप्त धर्मविधा में रचा-बसा है।

समाज कहता है 'औरत ही औरत की दुश्मन है।' 'महिलाओं में ईर्ष्या की भावना होती है।' वास्तव में यह सोच ही औरतों के आपस की दूरी का कारण बनती है। यदि हम ऐसे विश्वासों को ढोते रहेंगे तो हमारी समझ कभी उभर नहीं सकती है। अतः इन सोचों का आधार क्या है यह देखना बहुत जरूरी है।

आर्थिक निर्णय लेने का अधिकार पुरुषों को

है। दहेज में मांगे गए स्कूटर सास नहीं चलाती। यदि कोई औरत अपनी जन्मजात बेटी को मारती है तो इसके पीछे समाज दोषी है, न कि वह मां। औरत समाज की निन्दा के भय से, निजी पीड़ा के भय से (कि जो स्वयं उसने झेला है वही उसकी बेटी भी झेलेगी) बालिका-शिशु की मृत्यु का कारण बनती है।

धन ही नहीं परिवार के किसी भी विषय पर निर्णय लेने का अधिकार पुरुष को ही प्राप्त होता है। यह कड़वा सच ही है कि लड़की के जीवन में 'शादी' जैसे अहम् प्रश्न पर भी उसे कोई निर्णय लेने की आज़ादी नहीं होती। गांवों और पिछड़े वर्गों में यह स्थिति और भी ख़राब है।

गांवों में आज भी बाल-विवाह पर बल दिया जाता है। इसके पीछे कारण है यह भय कि लड़की कुंवारेपन में ही मां न बन जाए। उसके साथ कुछ ग़लत न हो जाए, जिससे परिवार की बदनामी हो। वास्तव में हमारे समाज में लड़की माता-पिता, खानदान की इज़्ज़त का प्रतीक मानी जाती है। यहां उस किशोरी के भविष्य व स्वास्थ्य की कोई चिन्ता नहीं होती।

सवाल यह उठता है कि महिलाओं के आपसी झगड़े की जड़ क्या होती है? जो अधिकार भावना महिलाओं में होती है वही पुरुषों में भी होती है लेकिन 'पुरुष, पुरुष का दुश्मन होता है।' यह बात सुनने में नहीं आती। वास्तव में कभी ज़मीन, तो कभी जायदाद और राजनीति में पुरुष अक्सर लड़ते रहते हैं। कौन अच्छी और बुरी औरत की परिभाषा देता है? यह जानना बहुत ज़रूरी है। यदि औरतों का आपस में बुरा रिश्ता होता है तो इससे फ़ायदा कौन उठाता है?

सम्बन्धों की दृष्टि से देखें तो कुछ महिलाओं को समाज द्वारा परिवार में सम्मानित पद प्रदान किया गया है जैसे सास, ननद, जेठानी। सास अपनी बहू पर अधिकार का भाव रखती है। वह इस अधिकार का ग़लत इस्तेमाल भी करती है। यह दुर्व्यवहार ही पितृसत्ता की भावना को सहयोग देता है। अतः यह समझना ज़रूरी है कि वास्तव में कौन दुश्मन होता है। न मर्द, न औरत बल्कि वह पितृसत्ता जिसे हम नासमझी से, स्वीकार लेते हैं, एक धर्म और संस्कृति के नाम पर।

यह भी देखा जाता है कि समाज में औरतों के घरेलू कामों को कोई दर्जा नहीं दिया जाता। औरत के घरेलू कार्य को 'कुछ नहीं' के रूप में ही स्थान दिया जाता है। उन्हें घर के हर मामले से अलग रखने की कोशिश की जाती है। उसकी सलाह को नज़रअन्दाज़ किया जाता है। एक पितृसत्तात्मक समाज से मिले सहज संस्कारों के रहते महिलाएं अपनी सत्ता या पहचान के प्रति भी जागरुक नहीं नज़र आती हैं।

यहां तक कि गांवों में भी जब औरतें पंचायत प्रधान के रूप में आगे आती हैं तो उनकी मर्दों द्वारा आलोचना ही होती है। औरत पितृसत्ता से इतनी जकड़ी है कि वह अपने अधिकारों के मूल्य को भी खो देती है। पुरुष के सुझाव से ही वह हर काम करती है चाहे वह गांव की प्रधान ही क्यों न हो।

अतः आवश्यकता है इस पितृसत्ता से लड़ने की जिसने लिंग भेद के बीज रोप कर स्त्रियों के मूल्य को गिरा दिया है। □

सीमा श्रीवास्तव

(गीता भारद्वाज की रिपोर्ट पर आधारित लेख)